॥ भज गोविन्दम् ॥

(हिन्दी अनुवाद : सागर पित्रोडा)

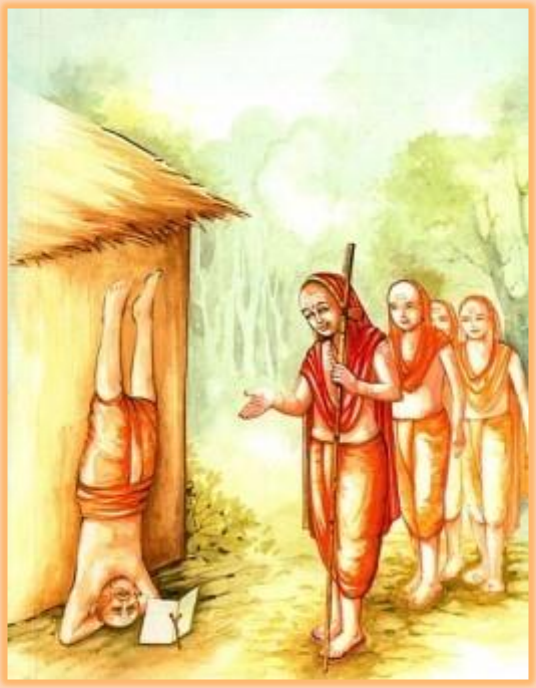

॥ भज गोविन्दम् ॥

भज गोविन्दम् श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी की कृति है । यह कृति वेदांत का सार समझाती है और मनुष्य को सोचने के लिए प्रेरित करती है कि, मुझे यह जीवन क्यूँ मिला? क्यूँ मैं वित्त संग्रह करता हूँ, परिवार को संभालता हूँ, फिर भी अशांत हूँ? सत्य क्या है? जीवन का हेतु क्या है? इस विचारों से जागृत मानव भगवद् पथ पर चलने लगता है । अतः इसे "मोहमुद्गर" भी कहा जाता है ।

काशी में परिभ्रमण के दौरान शंकराचार्यजी ने एक बूढे व्यक्ति को संस्कृत व्याकरण के नियमों को पढ़ते हुए देखा । उसे देख करुणामय शंकराचार्यजी सोचने लगे कि, बुद्धि का इस तरह व्यय करने से बेहतर है कि प्रार्थना में और मन के नियंत्रण के प्रयास में उसे लगाया जाए । शंकराचार्यजी को पूरा विश्व नज़र आया, जो परब्रह्म के चिंतन की बजाय सिर्फ बौद्धिक या ऐन्द्रिक सुखों के पीछे भाग रहा है । और यही पर उद्भव हुआ "भज गोविन्दम्" का ।

भज गोविन्दम् के दो भाग है । द्वादशमञ्जरीका स्तोत्रम् और चतुर्दशमञ्जरीका स्तोत्रम् । पहले श्लोक के बाद शंकराचार्यजी ने १२ श्लोक कहे । यह समूह बना द्वादशमञ्जरीका स्तोत्रम् । इससे प्रेरित हो कर शंकराचार्यजी के १४ शिष्यों ने १४ श्लोकों की रचना की । यह समूह बना चतुर्दशमञ्जरीका स्तोत्रम् । स्तोत्रपूर्ती के लिए शंकराचार्यजी ने ओर ५ श्लोक कहे ।

शंकराचार्यजी के शब्द धारदार चाकू की तरह है । कोई शल्य चिकित्सक बड़ी क्रूरता से चाकू से हमारे शरीर की कोई रसौली निकाल देता है, लेकिन तब जो दर्द होता है वह हमारे स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है । वैसे ही शब्द शंकराचार्यजी के है, जो सीधा हमारे मन को लगते है, अज्ञान को निकाल देते है और हमें शाश्वत आनंद प्रदान करते है ।

... ॐ ...

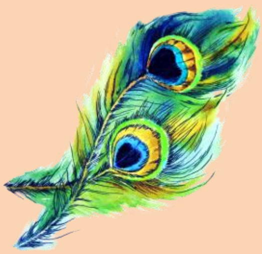

भज गोविन्दं भज गोविन्दं

गोविन्दं भज मूढमते ।

संप्राप्ते सन्निहिते काले

न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे ॥१॥

हे मोह से ग्रसित बुद्धि वाले मानव,

गोविन्द को भजो, गोविन्द का नाम लो,

गोविन्द से प्रेम करो

क्योंकि मृत्यु के समय व्याकरण के नियम याद

रखने से आपकी

रक्षा नहीं हो सकती है ॥१॥

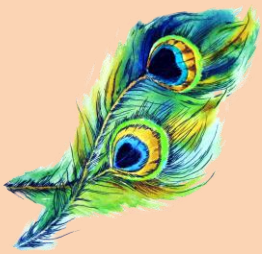

मूढ जहीहि धनागमतृष्णाम्
कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तम्,
वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥२॥

हे मोहित बुद्धि!
धन एकत्र करने के लोभ को त्यागो।
अपने मन से इन समस्त कामनाओं का त्याग करो।
सत्य के पथ का अनुसरण करो,
अपने परिश्रम से जो धन प्राप्त हो
उससे ही अपने मन को प्रसन्न रखो ॥२॥

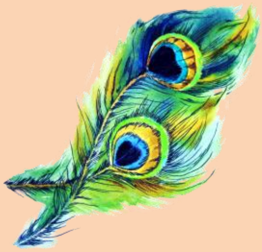

नारीस्तनभरनाभीदेशम्
दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम् ।
एतन्मांस वसादिविकारम्
मनसि विचिन्तय वारं वारम् ॥३॥

स्त्री शरीर पर मोहित होकर आसक्त मत हो।
अपने मन में निरंतर स्मरण करो
कि ये मांस-वसा आदि के विकार के अतिरिक्त कुछ
और नहीं हैं ॥३॥

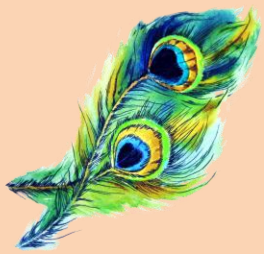

नलिनीदलगतजलमतितरलं
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं
लोक शोकहतं च समस्तम् ॥४॥

जीवन कमल-पत्र पर पड़ी हुई
पानी की बूंदों के समान
अनिश्चित एवं अल्प (क्षणभंगुर) है।
यह समझ लो कि समस्त विश्व
रोग, अहंकार और दुःख में डूबा हुआ है ॥४॥

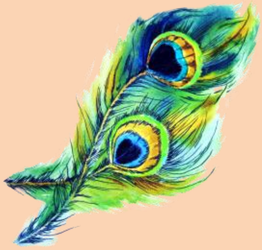

यावद्वित्तोपार्जनसक्तः

तावन्निजपरिवारो रक्तः ।

पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे

वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥५॥

जब तक व्यक्ति धनोपार्जन में समर्थ है,

तब तक परिवार में सभी उसके प्रति

स्नेह प्रदर्शित करते हैं

परन्तु अशक्त हो जाने पर

उसे सामान्य बातचीत में भी नहीं पूछा जाता है

॥५॥

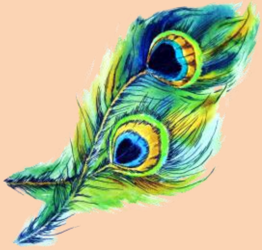

यावत्पवनो निवसति देहे
तावत् पृच्छति कुशलं गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये
भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ॥६॥

जब तक शरीर में प्राण रहते हैं
तब तक ही लोग कुशल पूछते हैं।
शरीर से प्राण वायु के निकलते ही
पत्नी भी उस शरीर से डरती है ॥६॥

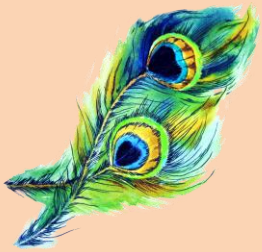

बालस्तावत् क्रीडासक्तः
तरुणस्तावत् तरुणीसक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तः
परे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः ॥७॥

बचपन में खेल में रूचि होती है,
युवावस्था में युवति के प्रति आकर्षण होता है,
वृद्धावस्था में चिंताओं से घिरे रहते हैं
किन्तु प्रभु से कोई प्रेम नहीं करता है ॥७॥

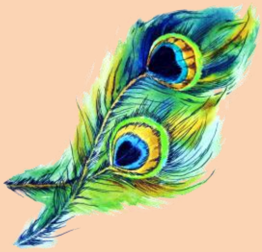

का ते कांता कस्ते पुत्रः
संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातः
तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः ॥८॥

कौन तुम्हारी पत्नी है, कौन तुम्हारा पुत्र है,
ये संसार अत्यंत विचित्र है,
तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, बन्धु !
इस बात पर तो पहले विचार कर लो ॥८॥

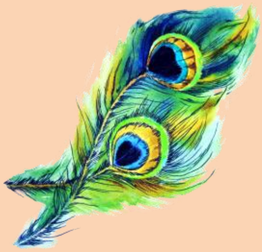

सत्संगत्वे निस्संगत्वं
निस्संगत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं
निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः ॥९॥

सत्संग से वैराग्य,
वैराग्य से विवेक,
विवेक से स्थिर तत्त्वज्ञान
और तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥९॥

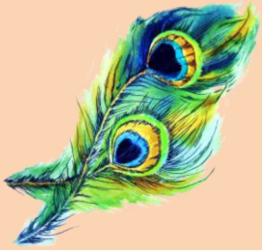

वयसि गते कः कामविकारः
शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः
ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥१०॥

आयु बीत जाने के बाद काम-भाव नहीं रहता,
पानी सूख जाने पर तालाब नहीं रहता,
धन चले जाने पर परिवार नहीं रहता
और तत्त्वज्ञान होने के बाद संसार नहीं रहता ॥१०॥

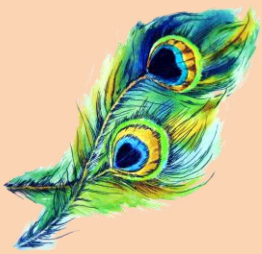

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं
हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलम् हित्वा
ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥११॥

धन, शक्ति और यौवन पर गर्व मत करो,
समय क्षण भर में इनको नष्ट कर देता है ।
इस विश्व को माया से घिरा हुआ जान कर
तुम ब्रह्म पद में प्रवेश करो ॥११॥

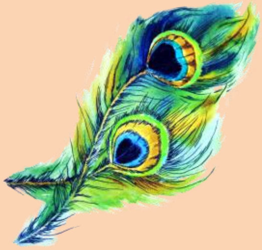

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः
शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः
तदपि न मुन्च्त्याशावायुः ॥१२॥

दिन और रात, शाम और सुबह,
सर्दी और बसंत बार-बार आते-जाते रहते है
काल की इस क्रीडा के साथ
जीवन नष्ट होता रहता है
पर इच्छाओ का अंत कभी नहीं होता है ॥१२॥

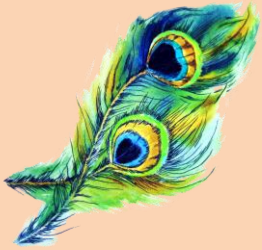

का ते कान्ता धन गतचिन्ता
वातुल किं तव नास्ति नियन्ता ।
त्रिजगति सज्जनसङ्गतिरैका
भवति भवार्णवतरणे नौका ॥१३॥

तुम्हें पत्नी और धन की इतनी चिंता क्यों है,
क्या उनका कोई नियंत्रक नहीं है ।
तीनों लोकों में केवल सज्जनों का साथ ही
इस भवसागर से पार जाने की नौका है ॥१३॥

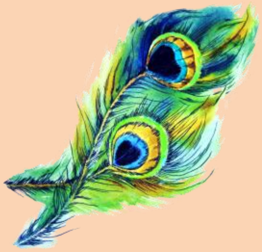

द्वादशमंजरिकाभिरशेषः

कथितो वैयाकरणस्यैषः ।

उपदेशोऽभूद्विद्यानिपुणैः

श्रीमच्छंकरभगवच्चरणैः ॥१३-अ॥

बारह गीतों का ये पुष्पहार,

सर्वज्ञ प्रभुपाद श्री शंकराचार्य द्वारा

एक वैयाकरण को प्रदान किया गया ॥१३-अ॥

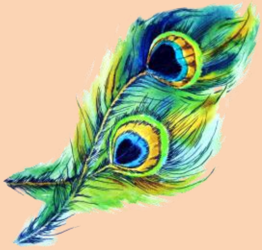

जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः
काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः
उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥१४॥

बड़ी जटाएं, केश रहित सिर, बिखरे बाल,
काषाय (भगवा) वस्त्र और भांति भांति के वेश
ये सब अपना पेट भरने के लिए ही
धारण किये जाते हैं,
अरे मोहित मनुष्य तुम इसको देख कर भी क्यों
नहीं देख पाते हो ॥१४॥

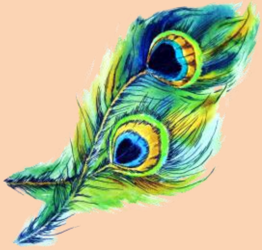

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं
दशनविहीनं जतं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं
तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥१५॥

क्षीण अंगों, पके हुए बालों,
दांतों से रहित मुख
और हाथ में दंड लेकर चलने वाला
वृद्ध भी आशा-पाश से बंधा रहता है ॥१५॥

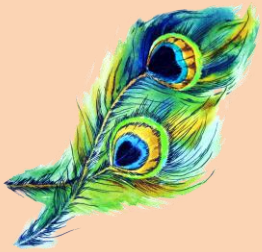

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः

रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः ।

करतलभिक्षस्तरुतलवासः

तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ॥१६॥

सूर्यास्त के बाद, रात्रि में आग जला कर

और घुटनों में सर छिपाकर सर्दी बचाने वाला,

हाथ में भिक्षा का अन्न खाने वाला,

पेड़ के नीचे रहने वाला भी

अपनी इच्छाओं के बंधन को छोड़ नहीं पाता है

॥१६॥

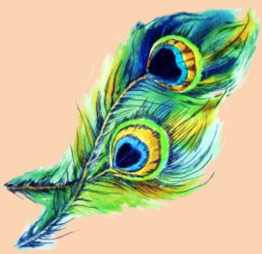

कुरुते गङ्गासागरगमनं
व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहिनः सर्वमतेन
मुक्तिं न भजति जन्मशतेन ॥१७॥

किसी भी धर्म के अनुसार ज्ञान रहित रहकर
गंगासागर जाने से,
व्रत रखने से और दान देने से
सौ जन्मों में भी मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है
॥१७॥

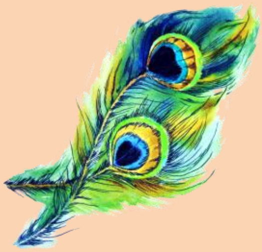

सुर मंदिर तरु मूल निवासः
शय्या भूतल मजिनं वासः ।
सर्व परिग्रह भोग त्यागः
कस्य सुखं न करोति विरागः ॥१८॥

देव मंदिर या पेड़ के नीचे निवास,
पृथ्वी जैसी शय्या, अकेले ही रहने वाले,
सभी संग्रहों और सुखों का
त्याग करने वाले वैराग्य से
किसको आनंद की प्राप्ति नहीं होगी ॥१८॥

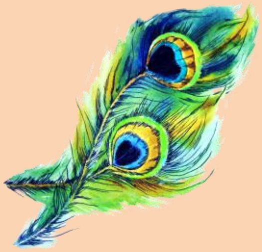

योगरतो वा भोगरतो वा
सङ्गरतो वा सङ्गवीहिनः ।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं
नन्दति नन्दति नन्दत्येव ॥१९॥

कोई योग में लगा हो या भोग में,
संग में आसक्त हो या निसंग हो,
पर जिसका मन ब्रह्म में लगा है
वो ही आनंद करता है, आनंद ही करता है ॥१९॥

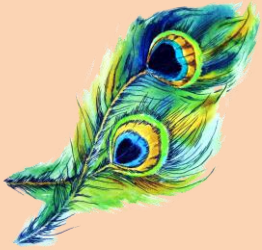

भगवद्गीता किञ्चिदधीता
गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा
क्रियते तस्य यमेन न चर्चा ॥२०॥

जिन्होंने भगवदगीता का
थोडा सा भी अध्ययन किया है,
भक्ति रूपी गंगाजल कणभर भी पिया है,
भगवान कृष्ण की एक बार भी
समुचित प्रकार से पूजा की है,
यम के द्वारा उनकी चर्चा नहीं की जाती है ॥२०॥

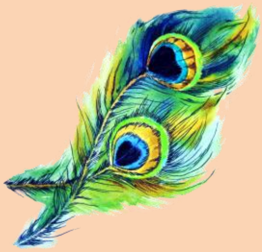

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।
इह संसारे बहुदुस्तारे
कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥२१॥

बार-बार जन्म, बार-बार मृत्यु,
बार-बार माँ के गर्भ में शयन,
इस संसार से पार जा पाना बहुत कठिन है,
हे कृष्ण ! कृपा करके मेरी इससे रक्षा करें ॥२१॥

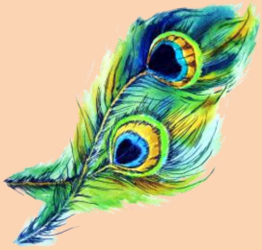

रथ्या चर्पट विरचित कन्थः
पुण्यापुण्य विवर्जित पन्थः ।
योगी योगनियोजित चित्तो
रमते बालोन्मत्तवदेव ॥२२॥

रथ के नीचे आने से फटे हुए कपडे पहनने वाले,
पुण्य और पाप से रहित पथ पर चलने वाले,
योग में अपने चित्त को लगाने वाले योगी,
बालक के समान आनंद में रहते हैं ॥२२॥

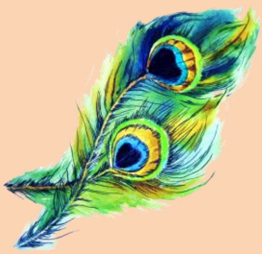

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः

का मे जननी को मे तातः ।

इति परिभावय सर्वमसारम्

विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारम् ॥२३॥

तुम कौन हो, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ,

मेरी माँ कौन है, मेरा पिता कौन है?

सब प्रकार से इस विश्व को असार समझ कर

इसको एक स्वप्न के समान त्याग दो ॥२३॥

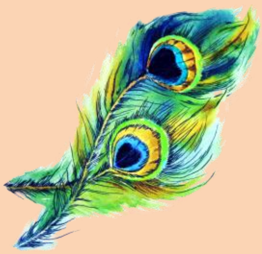

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः
व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं
वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥२४॥

तुममें, मुझमें और अन्यत्र भी
सर्वव्यापक विष्णु ही हैं,
तुम व्यर्थ ही क्रोध करते हो,
यदि तुम शाश्वत विष्णु पद को
प्राप्त करना चाहते हो
तो सर्वत्र समान चित्त वाले हो जाओ ॥२४॥

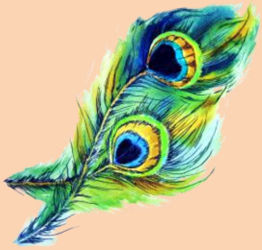

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ

मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।

सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं

सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥२५॥

शत्रु, मित्र, पुत्र, बन्धु-बांधवों से

प्रेम और द्वेष मत करो

सबमें अपने आप को ही देखो

इस प्रकार सर्वत्र ही भेद रूपी अज्ञान को त्याग दो

॥२५॥

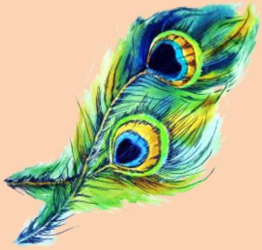

कामं क्रोधं लोभं मोहं

त्यक्त्वाऽत्मानं भावय कोऽहम् ।

आत्मज्ञान विहीना मूढाः

ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥२६॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह को छोड़ कर,

स्वयं में स्थित होकर विचार करो

कि मैं कौन हूँ,

जो आत्मज्ञान से रहित मोहित व्यक्ति हैं

वो बार-बार छिपे हुए

इस संसार रूपी नरक में पड़ते हैं ॥२६॥

गेयं गीता नाम सहस्रं
ध्येयं श्रीपति रूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जन सङ्गे चित्तं
देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥२७॥

भगवान विष्णु के सहस्त्र नामों को गाते हुए
उनके सुन्दर रूप का अनवरत ध्यान करो,
सज्जनों के संग में अपने मन को लगाओ
और गरीबों की अपने धन से सेवा करो ॥२७॥

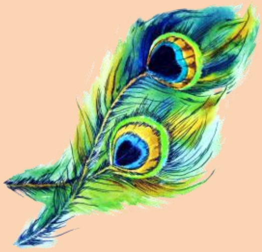

सुखतः क्रियते रामाभोगः
पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ॥२८॥

सुख के लिए लोग आनंद-भोग करते हैं
जिसके बाद इस शरीर में रोग हो जाते हैं ।
यद्यपि इस पृथ्वी पर सबका मरण सुनिश्चित है
फिर भी लोग पापमय आचरण को नहीं छोड़ते हैं
॥२८॥

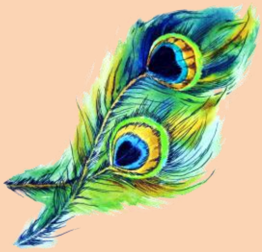

अर्थमनर्थम् भावय नित्यं
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः
सर्वत्रैषा विहिता रीतिः ॥२९॥

धन अकल्याणकारी है
और इससे जरा सा भी सुख नहीं मिल सकता है,
ऐसा विचार प्रतिदिन करना चाहिए ।
धनवान व्यक्ति तो अपने पुत्रों से भी डरते हैं
ऐसा सबको पता ही है ॥२९॥

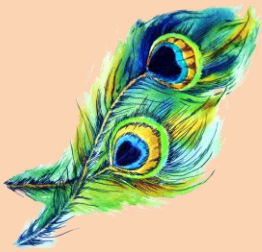

प्राणायामं प्रत्याहारं
नित्यानित्य विवेकविचारम् ।
जाप्यसमेत समाधिविधानं
कुर्ववधानं महदवधानम् ॥३०॥

प्राणायाम, उचित आहार, नित्य इस संसार की
अनित्यता का
विवेक पूर्वक विचार करो,
प्रेम से प्रभु नाम का जाप करते हुए
समाधि में ध्यान दो, बहुत ध्यान दो ॥३०॥

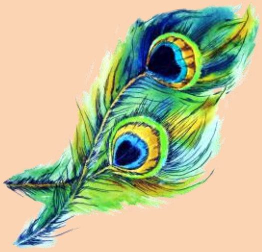

गुरुचरणाम्बुज निर्भर भक्तः
संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रियमानस नियमादेवं
द्रक्ष्यसि निज हृदयस्थं देवम् ॥३१॥

गुरु के चरण कमलों का ही आश्रय मानने वाले
भक्त बनकर सदैव के लिए इस संसार में आवागमन
से मुक्त हो जाओ,
इस प्रकार मन एवं इन्द्रियों का निग्रह कर
अपने हृदय में विराजमान प्रभु के दर्शन करो ॥३१॥

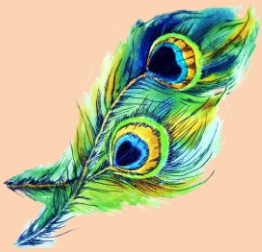

मूढः कश्चन वैयाकरणो
डुकृञ्करणाध्ययन धुरिणः ।
श्रीमद् शङ्कर भगवत् शिष्यैः
बोधित आसिच्छोधितकरणः ॥३२॥

इस प्रकार व्याकरण के नियमों को
कंठस्थ करते हुए
किसी मोहित वैयाकरण के माध्यम से
बुद्धिमान श्री भगवान शंकर के शिष्य
बोध प्राप्त करने के लिए प्रेरित किये गए ॥३२॥

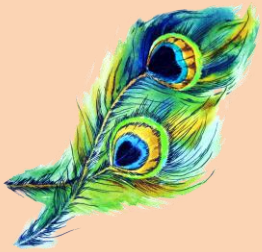

भजगोविन्दं भजगोविन्दं

गोविन्दं भज मूढमते ।

नामस्मरणादन्यमुपायं

नहि पश्यामो भवाब्धितरणे ॥३३॥

गोविन्द को भजो, गोविन्द का नाम लो,

गोविन्द से प्रेम करो

क्योंकि भगवान के नाम जप के अतिरिक्त

इस भवसागर से पार जाने का अन्य कोई मार्ग

नहीं है ॥३३॥

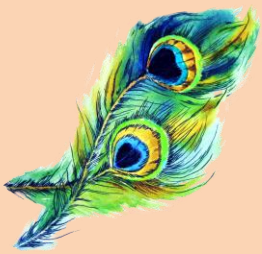

॥ भज गोविन्दम् ॥